॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

केनोपनिषद्

[यह उपनिषद् सामवेदके 'तलवकार ब्राह्मण' के अन्तर्गत है। तलवकारको जैमिनीय उपनिषद् भी कहते हैं। 'तलवकार ब्राह्मण' के अस्तित्त्वके सम्बन्धमें कुछ पाश्चात्त्य विद्वानोंको सन्देह हो गया था, परन्तु डॉ० बर्नेलको कहींसे एक प्राचीन प्रति मिल गयी, तबसे वह सन्देह जाता रहा। इस उपनिषद्में सबसे पहले 'केन' शब्द आया है, इसीसे इसका 'केनोपनिषद्' नाम पड़ गया। इसे 'तलवकार-उपनिषद्' और 'ब्राह्मणोपनिषद्' भी कहते हैं। तलवकार ब्राह्मणका यह नवम अध्याय है। इसके पूर्वके आठ अध्यायोंमें अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये विभिन्न कर्म और उपासनाओंका वर्णन है। इस उपनिषद्का प्रतिपाद्य विषय 'परब्रह्मतत्त्व', बहुत ही गहन है, अतएव उसको भलीभाँति समझानेके लिये गुरु-शिष्य-संवादके रूपमें तत्त्वका विवेचन किया गया है।]

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ॐ = हे परब्रह्म परमात्मन्!; **मम** = मेरे; **अङ्गानि** = सम्पूर्ण अङ्ग; **वाक्** = वाणी; **प्राणः** = प्राण; **चक्षुः** = नेत्र; **श्रोत्रम्** = कान; **च** =और; **सर्वाणि** = सब; **इन्द्रियाणि** =इन्द्रियाँ; **अथो** = तथा; **बलम्** = शक्ति; **आप्यायन्तु** = परिपुष्ट हों; **सर्वम्** = (यह जो) सर्वरूप; **औपनिषदम्** = उपनिषद्-प्रतिपादित; **ब्रह्म** = ब्रह्म है; **अहम्** = मैं; **ब्रह्म** = इस ब्रह्मको; **मा निराकुर्याम्** = अस्वीकार न करूँ; (और) **ब्रह्म** = ब्रह्म; **मा** = मुझको; **मा निराकरोत्** = परित्याग न करे; **अनिराकरणम्** = (उसके साथ मेरा) अटूट सम्बन्ध; **अस्तु** = हो; **मे** = मेरे साथ; **अनिराकरणम्** = (उसका) अटूट सम्बन्ध; **अस्तु** = हो; **उपनिषत्सु** = उपनिषदोंमें प्रतिपादित; **ये** = जो; **धर्माः** = धर्मसमूह हैं; **ते** = वे सब; **तदात्मनि** = उस परमात्मामें; **निरते** = लगे हुए; **मयि** = मुझमें; **सन्तु** = हों; **ते** = वे सब; **मयि** = मुझमें; **सन्तु** = हों। **ॐ** = हे परमात्मन्!; **शान्तिः शान्तिः शान्तिः** = त्रिविध तापोंकी निवृत्ति हो।

व्याख्या—हे परमात्मन्! मेरे सारे अङ्ग, वाणी, नेत्र-श्रोत्र आदि सभी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ, प्राणसमूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज—सब पुष्टि एवं वृद्धिको प्राप्त हों। उपनिषदोंमें सर्वरूप ब्रह्मका जो स्वरूप वर्णित है, उसे मैं कभी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा कभी प्रत्याख्यान न करे। मुझे सदा अपनाये रखे। मेरे साथ ब्रह्मका और ब्रह्मके साथ मेरा नित्य सम्बन्ध बना रहे। उपनिषदोंमें जिन धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है, वे सारे धर्म, उपनिषदोंके एकमात्र लक्ष्य परब्रह्म परमात्मामें निरन्तर लगे हुए मुझ साधकमें सदा प्रकाशित रहें, मुझमें नित्य-निरन्तर बने रहें और मेरे त्रिविध तापोंकी निवृत्ति हो।

[प्रथम खण्ड]

सम्बन्ध—*शिष्य गुरुदेवसे पूछता है—*

ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥ १॥

केन = किसके द्वारा; **इषितम्** = सत्ता-स्फूर्ति पाकर; (और) **प्रेषितम्** = प्रेरित—सञ्चालित होकर (यह); **मनः** = मन (अन्तःकरण); **पतति** = अपने विषयोंमें गिरता है—उनतक पहुँचता है; **केन** = किसके द्वारा;

युक्तः = नियुक्त होकर; **प्रथमः** = अन्य सबसे श्रेष्ठ; **प्राणः** = प्राण; **प्रैति** = चलता है; **केन** = किसके द्वारा; **इषिताम्** = क्रियाशील की हुई; **इमाम्** = इस; **वाचम्** = वाणीको; **वदन्ति** = लोग बोलते हैं; **कः** = (और) कौन; **उ** = प्रसिद्ध; **देवः** = देव; **चक्षुः** = नेत्रेन्द्रिय (और); **श्रोत्रम्** = कर्णेन्द्रियको; **युनक्ति** = नियुक्त करता है (अपने-अपने विषयोंके अनुभवमें लगाता है)॥ १॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें चार प्रश्न हैं। इनमें प्रकारान्तरसे यह पूछा गया है कि जडरूप अन्तःकरण, प्राण, वाणी आदि कर्मेन्द्रिय और चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियोंको अपना-अपना कार्य करनेकी योग्यता प्रदान करनेवाला और उन्हें अपने-अपने कार्यमें प्रवृत्त करनेवाला जो कोई एक सर्वशक्तिमान् चेतन है, वह कौन है? और कैसा है?॥ १॥

सम्बन्ध—*इसके उत्तरमें गुरु कहते हैं*—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचꣳ स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ २॥

यत् = जो; **मनसः** = मनका; **मनः** = मन अर्थात् कारण है; **प्राणस्य** = प्राणका; **प्राणः** = प्राण है; **वाचः** = वाक्-इन्द्रियका; **वाचम्** = वाक् है; **श्रोत्रस्य** = श्रोत्रेन्द्रियका; **श्रोत्रम्** = श्रोत्र है; **उ** = और; **चक्षुषः** = चक्षु-इन्द्रियका; **चक्षुः** = चक्षु है; **सः** = वह; **ह** = ही (इन सबका प्रेरक परमात्मा है); **धीराः** = ज्ञानीजन (उसे जानकर); **अतिमुच्य** = जीवन्मुक्त होकर; **अस्मात्** = इस; **लोकात्** = लोकसे; **प्रेत्य** = जानेके बाद (मृत्युके अनन्तर); **अमृताः** = अमर (जन्म-मृत्युसे रहित); **भवन्ति** = हो जाते हैं॥ २॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें गुरु शिष्यके प्रश्नोंका स्पष्ट उत्तर न देकर 'जो श्रोत्रका भी श्रोत्र है' इत्यादि शब्दोंके द्वारा संकेतसे समझा रहे हैं कि जो इन मन, प्राण और सम्पूर्ण इन्द्रियोंका—समस्त जगत्का परम कारण है, जिससे ये सब उत्पन्न हुए हैं, जिसकी शक्तिको पाकर ये सब अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ हो रहे हैं और जो इन सबको जाननेवाला है, वह परब्रह्म पुरुषोत्तम ही इन सबका प्रेरक है। उसे जानकर ज्ञानीजन जीवन्मुक्त होकर इस लोकसे प्रयाण करनेके अनन्तर अमृतस्वरूप—विदेहमुक्त हो जाते हैं अर्थात् जन्म-मृत्युसे सदाके लिये छूट जाते हैं॥ २॥

सम्बन्ध—*वह मन, प्राण और इन्द्रियोंका प्रेरक ब्रह्म 'ऐसा' है, इस प्रकार स्पष्ट न कहकर संकेतसे ही क्यों समझाया?—इस जिज्ञासापर पुनः गुरु कहते हैं*—

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे॥ ३॥

तत्र = वहाँ (उस ब्रह्मतक); **न** = न तो; **चक्षुः** = चक्षु-इन्द्रिय (आदि सब ज्ञानेन्द्रियाँ); **गच्छति** = पहुँच सकती हैं; **न** = न; **वाक्** = वाक्-इन्द्रिय (आदि कर्मेन्द्रियाँ); **गच्छति** = पहुँच सकती हैं (और); **नो** = न; **मनः** = मन (अन्तःकरण) ही; (अतः) **यथा** = जिस प्रकार; **एतत्** = इस (ब्रह्मके स्वरूप)-को; **अनुशिष्यात्** = बतलाया जाय कि वह ऐसा है; **न विद्मः** = (इस बातको) न तो हम स्वयं अपनी बुद्धिसे जानते हैं (और); **न विजानीमः** = न दूसरोंसे सुनकर ही जानते हैं; (क्योंकि) **तत्** = वह; **विदितात्** = जाने हुए (जाननेमें आनेवाले) पदार्थसमुदायसे; **अन्यत् एव** = भिन्न ही है; **अथो** = और; **अविदितात्** = (मन-इन्द्रियोंद्वारा) न जाने हुए (जाननेमें न आनेवाले)-से (भी); **अधि** = ऊपर है; **इति** = यह; **पूर्वेषाम्** = अपने पूर्वाचार्योंके मुखसे; **शुश्रुम** = सुना है; **ये** = जिन्होंने; **नः** = हमें; **तत्** = उस ब्रह्मका तत्त्व; **व्याचचक्षिरे** = भलीभाँति व्याख्या करके समझाया था॥ ३॥

व्याख्या—उन सच्चिदानन्दघन परब्रह्मको प्राकृत अन्तःकरण और इन्द्रियाँ नहीं जान सकतीं। ये वहाँतक पहुँच ही नहीं पातीं। उस अलौकिक दिव्य तत्त्वमें इनका प्रवेश ही नहीं हो सकता। बल्कि इनमें जो चेतना और क्रिया प्रतीत होती है, यह उसी ब्रह्मकी प्रेरणासे और उसीकी शक्तिसे होती है। ऐसी अवस्थामें

मन-इन्द्रियोंके द्वारा कोई कैसे बतलाये कि वह ब्रह्म 'ऐसा' है। इस प्रकार ब्रह्मतत्त्वके उपदेशका कोई तरीका न तो हमने किसीके भी द्वारा सुनकर समझा है और न हम स्वयं अपनी बुद्धिसे ही विचारके द्वारा समझ रहे हैं। हमने तो जिन महापुरुषोंसे इस गूढ़ तत्त्वका उपदेश प्राप्त किया है, उनसे यही सुना है कि वह परब्रह्म परमेश्वर जड-चेतन दोनोंसे ही भिन्न है—जाननेमें आनेवाले सम्पूर्ण दृश्य जड-वर्ग (क्षर)-से तो वह सर्वथा भिन्न है और इस जड-वर्गको जाननेवाले परंतु स्वयं जाननेमें न आनेवाले जीवात्मा (अक्षर)-से भी उत्तम है। ऐसी स्थितिमें उसके स्वरूपतत्त्वको वाणीके द्वारा व्यक्त करना कदापि सम्भव नहीं है। इसीसे उसको समझानेके लिये संकेतका ही आश्रय लेना पड़ता है॥ ३॥

सम्बन्ध—*अब उसी ब्रह्मको प्रश्नोंके अनुसार पुनः पाँच मन्त्रोंमें समझाते हैं—*

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ४॥

यत् = जो; **वाचा** = वाणीके द्वारा; **अनभ्युदितम्** = नहीं बतलाया गया है; [**अपि तु** = बल्कि;] **येन** = जिससे; **वाक्** = वाणी; **अभ्युद्यते** = बोली जाती है अर्थात् जिसकी शक्तिसे वक्ता बोलनेमें समर्थ होता है; **तत्** = उसको; **एव** = ही; **त्वम्** = तू; **ब्रह्म** = ब्रह्म; **विद्धि** = जान; **इदम् यत्** = वाणीके द्वारा बतानेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी; **उपासते** = (लोग) उपासना करते हैं; **इदम्** = यह; **न** = (ब्रह्म) नहीं है॥ ४॥

व्याख्या—वाणीके द्वारा जो कुछ भी व्यक्त किया जा सकता है तथा प्राकृत वाणीसे बतलाये हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। ब्रह्मतत्त्व वाणीसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्तिके किसी अंशसे वाणीमें प्रकाशित होनेकी—बोलनेकी शक्ति आयी है, जो वाणीका भी ज्ञाता, प्रेरक और प्रवर्तक है, वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी प्रेरणासे वाणी बोली जाती है, वह कौन है?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है॥ ४॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ५॥

यत् = जिसको; (कोई भी) **मनसा** = मनसे (अन्तःकरणके द्वारा); **न** = नहीं; **मनुते** = समझ सकता; [**अपि तु** = बल्कि;] **येन** = जिससे; **मनः** = मन; **मतम्** = (मनुष्यका) जाना हुआ हो जाता है; **आहुः** = ऐसा कहते हैं; **तत्** = उसको; **एव** = ही; **त्वम्** = तू; **ब्रह्म** = ब्रह्म; **विद्धि** = जान; **इदम् यत्** = मन और बुद्धिके द्वारा जाननेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी; **उपासते** = (लोग) उपासना करते हैं; **इदम्** = यह; **न** = (ब्रह्म) नहीं है॥ ५॥

व्याख्या—बुद्धि और मनका जो कुछ भी विषय है, जो इनके द्वारा जाननेमें आ सकता है तथा प्राकृत मन-बुद्धिसे जाने हुए जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर मन और बुद्धिसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो मन-बुद्धिका ज्ञाता, उनमें मनन और निश्चय करनेकी शक्ति देनेवाला तथा मनन और निश्चय करनेमें नियुक्त करनेवाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशसे बुद्धिमें निश्चय करनेकी सामर्थ्य एवं मनमें मनन करनेकी सामर्थ्य आयी है, वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी शक्ति और प्रेरणाको पाकर मन अपने ज्ञेय पदार्थोंको जानता है, वह कौन है?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है॥ ५॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ६॥

यत् = जिसको (कोई भी); **चक्षुषा** = चक्षुके द्वारा; **न** = नहीं; **पश्यति** = देख सकता; [**अपि तु** = बल्कि;] **येन** = जिससे; **चक्षूंषि** = चक्षु; (अपने विषयोंको) **पश्यति** = देखता है; **तत्** = उसको; **एव** = ही; **त्वम्** = तू;

ब्रह्म = ब्रह्म; **विद्धि** = जान; **इदम् यत्** = चक्षुके द्वारा देखनेमें आनेवाले जिस दृश्यवर्गकी; **उपासते** = (लोग) उपासना करते हैं; **इदम्** = यह; **न**=(ब्रह्म) नहीं है॥ ६॥

व्याख्या—चक्षुका जो कुछ भी विषय है, जो इसके द्वारा देखने-जाननेमें आ सकता है तथा प्राकृत आँखोंसे देखे जानेवाले जिस पदार्थसमूहकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक रूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर चक्षु आदि इन्द्रियोंसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिसकी शक्ति और प्रेरणासे चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयको प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ होती हैं, जो इनको जाननेवाला और इन्हें अपने विषयोंको जाननेमें प्रवृत्त करनेवाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशका यह प्रभाव है, वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी शक्ति और प्रेरणासे चक्षु अपने विषयोंको देखता है, वह कौन है?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है॥ ६॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदꣳ श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ७॥

यत्=जिसको (कोई भी); **श्रोत्रेण**=श्रोत्रके द्वारा; **न**=नहीं; **शृणोति**=सुन सकता; [**अपि तु**=बल्कि;] **येन**=जिससे; **इदम्** = यह; **श्रोत्रम्**=श्रोत्र-इन्द्रिय; **श्रुतम्**=सुनी हुई है; **तत्**=उसको; **एव**=ही; **त्वम्**=तू; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **विद्धि**=जान; **इदम् यत्**=श्रोत्र-इन्द्रियके द्वारा जाननेमें आनेवाले जिस तत्त्वकी; **उपासते**=(लोग) उपासना करते हैं; **इदम्**=यह; **न**=(ब्रह्म) नहीं है॥ ७॥

व्याख्या—जो कुछ भी सुननेमें आनेवाला पदार्थ है तथा प्राकृत कानोंसे सुने जानेवाले जिस वस्तु-समुदायकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर श्रोत्रेन्द्रियसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो श्रोत्र-इन्द्रियका ज्ञाता, प्रेरक और उसमें सुननेकी शक्ति देनेवाला है तथा जिसकी शक्तिके किसी अंशसे श्रोत्र-इन्द्रियमें शब्दको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य आयी है, वह ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी शक्ति और प्रेरणासे श्रोत्र अपने विषयोंको सुननेमें प्रवृत्त होता है, वह कौन है?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है॥ ७॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ८॥

यत्=जो; **प्राणेन**=प्राणके द्वारा; **न प्राणिति**=चेष्टायुक्त नहीं होता; [**अपि तु**=बल्कि;] **येन**=जिससे; **प्राणः**=प्राण; **प्रणीयते**=चेष्टायुक्त होता है; **तत्**=उसको; **एव**=ही; **त्वम्**=तू; **ब्रह्म**=ब्रह्म; **विद्धि**=जान; **इदम् यत्**=प्राणोंकी शक्तिसे चेष्टायुक्त दीखनेवाले जिन तत्त्वोंकी; **उपासते**=(लोग) उपासना करते हैं; **इदम्**=ये; **न**=(ब्रह्म) नहीं हैं॥ ८॥

व्याख्या—प्राणके द्वारा जो कुछ भी चेष्टायुक्त की जानेवाली वस्तु है तथा प्राकृत प्राणोंसे अनुप्राणित जिस तत्त्वकी उपासना की जाती है, वह ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप नहीं है। परब्रह्म परमेश्वर उनसे सर्वथा अतीत है। उसके विषयमें केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जो प्राणका ज्ञाता, प्रेरक और उसमें शक्ति देनेवाला है, जिसकी शक्तिके किसी अंशको प्राप्त करके और जिसकी प्रेरणासे यह प्रधान प्राण सबको चेष्टायुक्त करनेमें समर्थ होता है, वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ब्रह्म है। इस मन्त्रमें 'जिसकी प्रेरणासे प्राण विचरता है, वह कौन है?' इस प्रश्नका उत्तर दिया गया है।

सारांश यह कि प्राकृत मन, प्राण तथा इन्द्रियोंसे जिन विषयोंकी उपलब्धि होती है, वे सभी प्राकृत होते हैं; अतएव उनको परब्रह्म

परमेश्वर परात्पर पुरुषोत्तमका वास्तविक स्वरूप नहीं माना जा सकता। इसलिये उनकी उपासना भी परब्रह्म परमेश्वरकी उपासना नहीं है। परब्रह्म परमेश्वरके मन-बुद्धि आदिसे अतीत स्वरूपको सांकेतिक भाषामें समझानेके लिये ही यहाँ गुरुने इन सबके ज्ञाता, शक्तिप्रदाता, स्वामी, प्रेरक, प्रवर्तक, सर्वशक्तिमान्, नित्य, अप्राकृत परमतत्त्वको ब्रह्म बतलाया है॥ ८॥

प्रथम खण्ड समाप्त॥ १॥

[द्वितीय खण्ड]

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमाꣳस्यमेव ते मन्ये विदितम्॥ १॥

यदि=यदि; **त्वम्**=तू; **इति**=यह; **मन्यसे**=मानता है (कि); **सुवेद**=(मैं ब्रह्मको) भलीभाँति जान गया हूँ; **अपि**=तो; **नूनम्**=निश्चय ही; **ब्रह्मणः**=ब्रह्मका; **रूपम्**=स्वरूप; **दभ्रम्**=थोड़ा-सा; **एव**=ही; (तू) **वेत्थ**=जानता है; (क्योंकि) **अस्य**=इस (परब्रह्म परमेश्वर)-का; **यत्**=जो (आंशिक) स्वरूप; **त्वम्**=तू है; (और) **अस्य**=इसका; **यत्**=जो (आंशिक) स्वरूप; **देवेषु**=देवताओंमें है; [**तत् अल्पम् एव**=वह सब मिलकर भी अल्प ही है;] **अथ नु**=इसीलिये; **मन्ये**=मैं मानता हूँ कि; **ते विदितम्**=तेरा जाना हुआ; (स्वरूप) **मीमांस्यम् एव**=निस्सन्देह विचारणीय है॥ १॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें गुरु अपने शिष्यको सावधान करते हुए कहते हैं कि 'हमारे द्वारा संकेतसे बतलाये हुए ब्रह्मतत्त्वको सुनकर यदि तू ऐसा मानता है कि मैं उस ब्रह्मको भलीभाँति जान गया हूँ तो यह निश्चित है कि तूने ब्रह्मके स्वरूपको बहुत थोड़ा जाना है; क्योंकि उस परब्रह्मका अंशभूत जो जीवात्मा है, उसीको अथवा समस्त देवताओंमें—यानी मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय आदिमें जो ब्रह्मका अंश है, जिससे वे अपना काम करनेमें समर्थ हो रहे हैं, उसको यदि तू ब्रह्म समझता है तो तेरा यह समझना यथार्थ नहीं है। ब्रह्म इतना ही नहीं है। इस जीवात्माको और समस्त विश्व-ब्रह्माण्डमें व्याप्त जो ब्रह्मकी शक्ति है, उस सबको मिलाकर भी देखा जाय तो वह ब्रह्मका एक अंश ही है। अतएव तेरा समझा हुआ यह ब्रह्मतत्त्व तेरे लिये पुनः विचारणीय है, ऐसा मैं मानता हूँ'॥ १॥

सम्बन्ध—*गुरुदेवके उपदेशपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके अनन्तर शिष्य उनके सामने अपना विचार प्रकट करता है—*

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥ २॥

अहम्=मैं; **सुवेद**=ब्रह्मको भलीभाँति जान गया हूँ; **इति न मन्ये**=यों नहीं मानता; (और) **नो**=न; **इति**=ऐसा (ही मानता हूँ कि); **न वेद**=नहीं जानता; (क्योंकि) **वेद च**=जानता भी हूँ; (किंतु यह जानना विलक्षण है) **नः**=हम शिष्योंमेंसे; **यः**=जो कोई भी; **तत्**=उस ब्रह्मको; **वेद**=जानता है; **तत्**=(वही) मेरे उक्त वचनके अभिप्रायको; **च**=भी; **वेद**=जानता है; (कि) **वेद**=मैं जानता हूँ; (और) **न वेद**=नहीं जानता; **इति**=ये दोनों ही; **नो**=नहीं हैं॥ २॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें शिष्यने अपने गुरुदेवके प्रति संकेतसे अपना अनुभव इस प्रकार प्रकट किया है कि "उस ब्रह्मको मैं भलीभाँति जानता हूँ, यह मैं नहीं मानता और न यह ही मानता हूँ कि मैं उसे नहीं जानता; क्योंकि मैं जानता भी हूँ, तथापि मेरा यह जानना वैसा नहीं है, जैसा कि किसी ज्ञाताका किसी ज्ञेय वस्तुको जानना है। यह उससे सर्वथा विलक्षण और अलौकिक है। इसलिये मैं जो यह कह रहा हूँ कि 'मैं

उसे नहीं जानता ऐसा भी नहीं और जानता हूँ ऐसा भी नहीं तो भी मैं उसे जानता हूँ।' मेरे इस कथनके रहस्यको हम शिष्योंमेंसे वही ठीक समझ सकता है, जो उस ब्रह्मको जानता है''॥ २॥

सम्बन्ध—*अब श्रुति स्वयं उपर्युक्त गुरु-शिष्य-संवादका निष्कर्ष कहती है—*

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥ ३॥

यस्य अमतम्=जिसका यह मानना है कि ब्रह्म जाननेमें नहीं आता; **तस्य**=उसका; **मतम्**=(तो वह) जाना हुआ है; (और) **यस्य**=जिसका; **मतम्**=यह मानना है कि ब्रह्म मेरा जाना हुआ है; **सः**=वह; **न**=नहीं; **वेद**=जानता; (क्योंकि) **विजानताम्**=जाननेका अभिमान रखनेवालोंके लिये; **अविज्ञातम्**=(वह ब्रह्मतत्त्व) बिना जाना हुआ है; (और) **अविजानताम्**=जिनमें ज्ञातापनका अभिमान नहीं है, उनका; **विज्ञातम्**=(वह ब्रह्मतत्त्व) जाना हुआ है अर्थात् उनके लिये वह अपरोक्ष है॥ ३॥

व्याख्या—जो महापुरुष परब्रह्म परमेश्वरका साक्षात् कर लेते हैं, उनमें किञ्चिन्मात्र भी ऐसा अभिमान नहीं रह जाता कि हमने परमेश्वरको जान लिया है। वे परमात्माके अनन्त असीम महिमा-महार्णवमें निमग्न हुए यही समझते हैं कि परमात्मा स्वयं ही अपनेको जानते हैं। दूसरा कोई भी ऐसा नहीं है, जो उनका पार पा सके। भला, असीमकी सीमा ससीम कहाँ पा सकता है? अतएव जो यह मानता है कि मैंने ब्रह्मको जान लिया है, मैं ज्ञानी हूँ, परमेश्वर मेरे ज्ञेय हैं, वह वस्तुतः सर्वथा भ्रममें है; क्योंकि ब्रह्म इस प्रकार ज्ञानका विषय नहीं है। जितने भी ज्ञानके साधन हैं, उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं जो ब्रह्मतक पहुँच सके। अतएव इस प्रकारके जाननेवालोंके लिये परमात्मा सदा अज्ञात हैं; जबतक जाननेका अभिमान रहता है, तबतक परमेश्वरका साक्षात्कार नहीं होता। परमेश्वरका साक्षात्कार उन्हीं भाग्यवान् महापुरुषोंको होता है, जिनमें जाननेका अभिमान किञ्चित् भी नहीं रह गया है॥ ३॥

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥ ४॥

प्रतिबोधविदितम्=उपर्युक्त प्रतिबोध (संकेत)-से उत्पन्न ज्ञान ही; **मतम्**=वास्तविक ज्ञान है; **हि**=क्योंकि इससे; **अमृतत्वम्**=अमृतस्वरूप परमात्माको; **विन्दते**=मनुष्य प्राप्त करता है; **आत्मना**=अन्तर्यामी परमात्मासे; **वीर्यम्**=परमात्माको जाननेकी शक्ति (ज्ञान); **विन्दते**=प्राप्त करता है; (और उस) **विद्यया**=विद्या—ज्ञानसे; **अमृतम्**=अमृतरूप परब्रह्म पुरुषोत्तमको; **विन्दते**=प्राप्त होता है॥ ४॥

व्याख्या—उपर्युक्त वर्णनमें परमात्माके जिस स्वरूपका लक्ष्य कराया गया था, उसको भलीभाँति समझ लेना ही वास्तविक ज्ञान है और इसी ज्ञानसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। परमात्माका ज्ञान करानेकी यह जो ज्ञानरूपा शक्ति है, यह मनुष्यको अन्तर्यामी परमात्मासे ही मिलती है। मन्त्रमें 'विद्यासे अमृत-रूप परब्रह्मकी प्राप्ति होती है' यह इसीलिये कहा गया है कि जिससे मनुष्यमें परब्रह्म पुरुषोत्तमके यथार्थ स्वरूपको जाननेके लिये रुचि और उत्साहकी वृद्धि हो॥ ४॥

सम्बन्ध—*अब उस ब्रह्मतत्त्वको इसी जन्ममें जान लेना अत्यन्त प्रयोजनीय है, यह बतलाकर इस प्रकरणका उपसंहार किया जाता है—*

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ ५॥

चेत्=यदि; **इह**=इस मनुष्यशरीरमें; **अवेदीत्**=(परब्रह्मको) जान लिया; **अथ**=तब तो; **सत्यम्**=बहुत कुशल; **अस्ति**=है; **चेत्**=यदि; **इह**=इस शरीरके रहते-रहते; **न अवेदीत्**=(उसे) नहीं जान पाया (तो); **महती**=महान्;

विनष्टिः=विनाश है; (यही सोचकर) **धीराः**=बुद्धिमान् पुरुष; **भूतेषु भूतेषु**=प्राणी-प्राणीमें (प्राणिमात्रमें); **विचित्य**=(परब्रह्म पुरुषोत्तमको) समझकर; **अस्मात्**=इस; **लोकात्**=लोकसे; **प्रेत्य**=प्रयाण करके; **अमृताः**=अमर (परमेश्वरको प्राप्त); **भवन्ति**=हो जाते हैं॥ ५॥

व्याख्या—मानव-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें तत्परताके साथ नहीं लग जाता, वह बहुत बड़ी भूल करता है। अतएव श्रुति कहती है कि 'जबतक यह दुर्लभ मानवशरीर विद्यमान है, भगवत्कृपासे प्राप्त साधनसामग्री उपलब्ध है, तभीतक शीघ्र-से-शीघ्र परमात्माको जान लिया जाय तो सब प्रकारसे कुशल है—मानव-जन्मकी परम सार्थकता है। यदि यह अवसर हाथसे निकल गया तो फिर महान् विनाश हो जायगा—बार-बार मृत्युरूप संसारके प्रवाहमें बहना पड़ेगा। फिर, रो-रोकर पश्चात्ताप करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह जायगा। संसारके त्रिविध तापों और त्रिविध शूलोंसे बचनेका यही एक परम साधन है कि जीव मानव-जन्ममें दक्षताके साथ साधनपरायण होकर अपने जीवनको सदाके लिये सार्थक कर ले। मनुष्यजन्मके सिवा जितनी और योनियाँ हैं, सभी केवल कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही मिलती हैं। उनमें जीव परमात्माको प्राप्त करनेका कोई साधन नहीं कर सकता। बुद्धिमान् पुरुष इस बातको समझ लेते हैं और इसीसे वे प्रत्येक जातिके प्रत्येक प्राणीमें परमात्माका साक्षात्कार करते हुए सदाके लिये जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर अमर हो जाते हैं॥ ५॥

द्वितीय खण्ड समाप्त॥ २॥

[तृतीय खण्ड]

सम्बन्ध—*प्रथम प्रकरणमें ब्रह्मका स्वरूपतत्त्व समझानेके लिये उसकी शक्तिका सांकेतिक भाषामें विभिन्न प्रकारसे दिग्दर्शन कराया गया। द्वितीय प्रकरणमें ब्रह्मज्ञानकी विलक्षणता बतलानेके लिये यह कहा गया कि प्रथम प्रकरणके वर्णनसे आपाततः ब्रह्मका जैसा स्वरूप समझमें आता है, वस्तुतः उसका पूर्णस्वरूप वही नहीं है। वह तो उसकी महिमाका अंशमात्र है। जीवात्मा, मन, प्राण, इन्द्रियादि तथा उनके देवता—सभी उसीसे अनुप्राणित, प्रेरित और शक्तिमान् होकर कार्यक्षम होते हैं। अब इस तीसरे प्रकरणमें दृष्टान्तके द्वारा यह समझाया जाता है कि विश्वमें जो कोई भी प्राणी या पदार्थ शक्तिमान्, सुन्दर और प्रिय प्रतीत होते हैं, उनके जीवनमें जो सफलता दीखती है, वह सभी उस परब्रह्म परमेश्वरके एक अंशकी ही महिमा है (गीता १०।४१)। इनपर यदि कोई अभिमान करता है तो वह बहुत बड़ी भूल करता है—*

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति॥ १॥

ब्रह्म=परब्रह्म परमेश्वरने; **ह**=ही; **देवेभ्यः**=देवताओंके लिये (उनको निमित्त बनाकर); **विजिग्ये**=(असुरोंपर) विजय प्राप्त की; **ह**=किंतु; **तस्य**=उस; **ब्रह्मणः**=परब्रह्म पुरुषोत्तमकी; **विजये**=विजयमें; **देवाः**=इन्द्रादि देवताओंने; **अमहीयन्त**=अपनेमें महत्त्वका अभिमान कर लिया; **ते**=वे; **इति**=ऐसा; **ऐक्षन्त**=समझने लगे (कि); **अयम्**=यह; **अस्माकम् एव**=हमारी ही; **विजयः**=विजय है; (और) **अयम्**=यह; **अस्माकम् एव**=हमारी ही; **महिमा**=महिमा है॥ १॥

व्याख्या—परब्रह्म पुरुषोत्तमने देवोंपर कृपा करके उन्हें शक्ति प्रदान की, जिससे उन्होंने असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली। यह विजय वस्तुतः भगवान्‌की ही थी, देवता तो केवल निमित्तमात्र थे; परंतु इस ओर देवताओंका ध्यान नहीं गया और वे भगवान्‌की कृपाकी ओर लक्ष्य न करके भगवान्‌की महिमाको अपनी महिमा समझ बैठे और अभिमानवश यह मानने लगे कि हम बड़े भारी शक्तिशाली हैं एवं हमने अपने ही बल-पौरुषसे असुरोंको पराजित किया है॥ १॥

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति॥ २॥

ह तत्=प्रसिद्ध है कि उस परब्रह्मने; **एषाम्**=इन देवताओंके; (अभिमानको) **विजज्ञौ**=जान लिया (और कृपापूर्वक उनका अभिमान नष्ट करनेके लिये वह); **तेभ्यः**=उनके सामने; **ह**=ही; **प्रादुर्बभूव**=साकाररूपमें प्रकट हो गया; **तत्**=उसको (यक्षरूपमें प्रकट हुआ देखकर भी); **इदम्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है, इस बातको; **न व्यजानत**=(देवताओंने) नहीं जाना॥ २॥

व्याख्या—देवताओंके मिथ्याभिमानको करुणा-वरुणालय भगवान् समझ गये। भक्त-कल्याणकारी भगवान्‌ने सोचा कि यह अभिमान बना रहा तो इनका पतन हो जायगा। भक्त-सुहृद् भगवान् भक्तोंका पतन कैसे सह सकते थे। अतः देवताओंपर कृपा करके उनका दर्प चूर्ण करनेके लिये वे उनके सामने दिव्य साकार यक्षरूपमें प्रकट हो गये। देवता आश्चर्यचकित होकर उस अत्यन्त अद्भुत विशाल रूपको देखने और विचार करने लगे कि यह दिव्य यक्ष कौन है; पर वे उसको पहचान नहीं सके॥ २॥

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति॥ ३॥

ते=उन इन्द्रादि देवताओंने; **अग्निम्**=अग्निदेवसे; **इति**=इस प्रकार; **अब्रुवन्**=कहा; **जातवेदः**=हे जातवेदा!; (आप जाकर) **एतत्**=इस बातको; **विजानीहि**=जानिये—इसका भलीभाँति पता लगाइये (कि); **इदम् यक्षम्**=यह दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है; (अग्निने कहा) **तथा इति**=बहुत अच्छा॥ ३॥

व्याख्या—देवता उस अति विचित्र महाकाय दिव्य यक्षको देखकर मन-ही-मन सहम-से गये और उसका परिचय जाननेके लिये व्यग्र हो उठे। अग्निदेवता परमतेजस्वी हैं, वेदार्थके ज्ञाता हैं, समस्त जातपदार्थोंका पता रखते हैं और सर्वज्ञ-से हैं। इसीसे उनका गौरवयुक्त नाम 'जातवेदा' है। देवताओंने इस कार्यके लिये अग्निको ही उपयुक्त समझा और उन्होंने कहा—'हे जातवेदा! आप जाकर इस यक्षका पूरा पता लगाइये कि यह कौन है?' अग्निदेवताको अपनी बुद्धि-शक्तिका गर्व था। अतः उन्होंने कहा—'अच्छी बात है, अभी पता लगाता हूँ'॥ ३॥

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीत्यग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति॥ ४॥

तत्=उसके समीप; (अग्निदेव) **अभ्यद्रवत्**=दौड़कर गया; **तम्**=उस अग्निदेवसे; **अभ्यवदत्**=(उस दिव्य यक्षने) पूछा; **कः असि इति**=(कि तुम) कौन हो; **अब्रवीत्**=(अग्निने) यह कहा (कि); **अहम्**=मैं; **वै अग्निः**=प्रसिद्ध अग्निदेव; **अस्मि इति**=हूँ; (और यह कि) **अहम् वै**=मैं ही; **जातवेदाः**=जातवेदाके नामसे; **अस्मि इति**=प्रसिद्ध हूँ॥ ४॥

व्याख्या—अग्निदेवताने सोचा, इसमें कौन बड़ी बात है और इसलिये वे तुरंत यक्षके समीप जा पहुँचे। उन्हें अपने समीप खड़ा देखकर यक्षने पूछा—आप कौन हैं? अग्निने सोचा—मेरे तेजःपुञ्ज स्वरूपको सभी पहचानते हैं, इसने कैसे नहीं जाना; अतः उन्होंने तमककर उत्तर दिया—'मैं प्रसिद्ध अग्नि हूँ, मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम जातवेदा है'॥ ४॥

सम्बन्ध—*तब यक्षरूपी ब्रह्मने अग्निसे पूछा—*

तस्मिꣳस्त्वयि किं वीर्यमिति। अपीदꣳ सर्वं दहेयम्, यदिदं पृथिव्यामिति॥ ५॥

तस्मिन् त्वयि=उक्त नामोंवाले तुझ अग्निमें; **किम् वीर्यम्**=क्या सामर्थ्य है; **इति**=यह बता; (तब अग्निने यह उत्तर दिया कि) **अपि**=यदि (मैं चाहूँ तो); **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **यत् इदम्**=यह जो कुछ भी है; **इदम् सर्वम्**=इस सबको; **दहेयम् इति**=जलाकर भस्म कर दूँ॥ ५॥

व्याख्या—अग्निकी गर्वोक्ति सुनकर ब्रह्मने अनजानकी भाँति कहा—'अच्छा! आप अग्निदेवता हैं और जातवेदा—सबका ज्ञान रखनेवाले भी आप ही हैं? बड़ी अच्छी बात है; पर यह तो बताइये कि आपमें क्या शक्ति है, आप क्या कर सकते हैं।' इसपर अग्निने पुनः सगर्व उत्तर दिया—'मैं क्या कर सकता हूँ, इसे आप जानना चाहते हैं? अरे! मैं चाहूँ तो इस सारे भूमण्डलमें जो कुछ भी देखनेमें आ रहा है,

सबको जलाकर अभी राखका ढेर कर दूँ'॥ ५॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति॥ ६॥

(तब उस दिव्य यक्षने); **तस्मै**=उस अग्निदेवके सामने; **तृणम्**=एक तिनका; **निदधौ**=रख दिया; (और यह कहा कि) **एतत्**=इस तिनकेको; **दह इति**=जला दो; **सः**=वह (अग्नि); **सर्वजवेन**=पूर्ण शक्ति लगाकर; **तत् उपप्रेयाय**=उस तिनकेपर टूट पड़ा (परंतु); **तत्**=उसको; **दग्धुम्**=जलानेमें; **न एव शशाक**=किसी प्रकार समर्थ नहीं हुआ; **ततः**=(तब लज्जित होकर) वहाँसे; **निववृते**=लौट गया (और देवताओंसे बोला); **एतत्**=यह; **विज्ञातुम्**=जाननेमें; **न अशकम्**=मैं समर्थ नहीं हो सका (कि वस्तुतः); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **यत् इति**=कौन है॥ ६॥

व्याख्या—अग्निदेवताकी पुनः गर्वोक्ति सुनकर सबको सत्ता-शक्ति देनेवाले यक्षरूपी परब्रह्म परमेश्वरने उनके आगे एक सूखा तिनका डालकर कहा—'आप तो सभीको जला सकते हैं, तनिक-सा बल लगाकर इस सूखे तृणको जला दीजिये।' अग्निदेवताने मानो इसको अपना अपमान समझा और वे सहज ही उस तृणके पास पहुँचे। जलाना चाहा; जब नहीं जला तो उन्होंने उसे जलानेके लिये अपनी पूरी शक्ति लगा दी। पर उसको तनिक-सी आँच भी नहीं लगी। आँच लगती कैसे। अग्निमें जो अग्नित्व है—दाहिका शक्ति है, वह तो शक्तिके मूल भण्डार परमात्मासे ही मिली हुई है। वे यदि उस शक्तिस्रोतको रोक दें तो फिर शक्ति कहाँसे आयेगी। अग्निदेव इस बातको न समझकर ही डींग हाँक रहे थे। पर जब ब्रह्मने अपनी शक्तिको रोक लिया, सूखा तिनका नहीं जल सका, तब तो उनका सिर लज्जासे झुक गया और वे हतप्रतिज्ञ और हतप्रभ होकर चुपचाप देवताओंके पास लौट आये और बोले कि 'मैं तो भलीभाँति नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है'॥ ६॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति तथेति॥ ७॥

अथ=तब; **वायुम्**=वायुदेवतासे; **अब्रुवन्**=(देवताओंने) कहा; **वायो**=हे वायुदेव!; (जाकर); **एतत्**=इस बातको; **विजानीहि**=आप जानिये—इसका भलीभाँति पता लगाइये (कि); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है; (वायुने कहा) **तथा इति**=बहुत अच्छा!॥ ७॥

व्याख्या—जब अग्निदेव असफल होकर लौट आये, तब देवताओंने इस कार्यके लिये अप्रतिमशक्ति वायुदेवको चुना और उनसे कहा कि 'वायुदेव! आप जाकर इस यक्षका पूरा पता लगाइये कि यह कौन है?' वायुदेवको भी अपनी बुद्धि-शक्तिका गर्व था, अतः उन्होंने भी कहा—'अच्छी बात है, अभी पता लगाता हूँ'॥ ७॥

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीति। वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति॥ ८॥

तत्=उसके समीप; **अभ्यद्रवत्**=(वायुदेवता) दौड़कर गया; **तम्**=उससे (भी); **अभ्यवदत्**=(उस दिव्य यक्षने) पूछा; **कः असि इति**=(कि तुम) कौन हो; **अब्रवीत्**=(तब वायुने) यह कहा (कि); **अहम्**=मैं; **वै वायुः**=प्रसिद्ध वायुदेव; **अस्मि इति**=हूँ; (और यह कि) **अहम् वै**=मैं ही; **मातरिश्वा**=मातरिश्वाके नामसे; **अस्मि इति**=प्रसिद्ध हूँ॥ ८॥

व्याख्या—वायुदेवताने सोचा, 'अग्नि कहीं भूल कर गये होंगे; नहीं तो यक्षका परिचय जानना कौन बड़ी बात थी। अस्तु, इस सफलताका श्रेय मुझको ही मिलेगा।' यह सोचकर वे तुरंत यक्षके समीप जा पहुँचे। उन्हें अपने समीप खड़ा देखकर यक्षने पूछा—'आप कौन हैं?' वायुने भी अपने गुण-गौरवके गर्वसे तमककर उत्तर दिया 'मैं प्रसिद्ध वायु हूँ, मेरा ही गौरवमय और रहस्यपूर्ण नाम मातरिश्वा है'॥ ८॥

सम्बन्ध—*यक्षरूपी ब्रह्मने वायुसे पूछा—*

तस्मिꣳस्त्वयि किं वीर्यमिति। अपीदꣳ सर्वमाददीयम्, यदिदं पृथिव्यामिति॥ ९॥

तस्मिन् त्वयि=उक्त नामोंवाले तुझ वायुमें; **किं वीर्यम्**=क्या सामर्थ्य है; **इति**=यह बता; (तब वायुने यह

उत्तर दिया कि) **अपि**=यदि (मैं चाहूँ तो); **पृथिव्याम्**=पृथ्वीमें; **यत् इदम्**=यह जो कुछ भी है; **इदम् सर्वम्**=इस सबको; **आददीयम् इति**=उठा लूँ—आकाशमें उड़ा दूँ॥ ९॥

व्याख्या—वायुकी भी वैसी ही गर्वोक्ति सुनकर ब्रह्मने इनसे भी वैसे ही अनजानकी भाँति कहा—'अच्छा! आप वायुदेवता हैं और मातरिश्वा—अन्तरिक्षमें बिना ही आधारके विचरण करनेवाले भी आप ही हैं? बड़ी अच्छी बात है! पर यह तो बताइये कि आपमें क्या शक्ति है—आप क्या कर सकते हैं?' इसपर वायुने भी अग्निकी भाँति ही पुनः सगर्व उत्तर दिया कि 'मैं चाहूँ तो इस सारे भूमण्डलमें जो कुछ भी देखनेमें आ रहा है, सबको बिना आधारके उठा लूँ—उड़ा दूँ'॥ ९॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते, नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति॥ १०॥

तस्मै=(तब उस दिव्य यक्षने) उस वायुदेवके सामने; **तृणम्**=एक तिनका; **निदधौ**=रख दिया; (और यह कहा कि) **एतत्**=इस तिनकेको; **आदत्स्व इति**=उठा लो—उड़ा दो; **सः**=वह (वायु); **सर्वजवेन**=पूर्ण शक्ति लगाकर; **तत् उपप्रेयाय**=उस तिनकेपर झपटा (परंतु); **तत्**=उसको; **आदातुम्**=उड़ानेमें; **न एव शशाक**=किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हुआ; **ततः**=(तब लज्जित होकर) वहाँसे; **निववृते**=लौट गया (और देवताओंसे बोला); **एतत्**=यह; **विज्ञातुम्**=जाननेमें; **न अशकम्**=मैं समर्थ नहीं हो सका (कि वस्तुतः); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **यत् इति**=कौन है॥ १०॥

व्याख्या—वायुदेवताकी भी पुनः वैसी ही गर्वोक्ति सुनकर सबको सत्ता-शक्ति देनेवाले परब्रह्म परमेश्वरने उनके आगे भी एक सूखा तिनका डालकर कहा—'आप तो सभीको उड़ा सकते हैं, तनिक-सा बल लगाकर इस सूखे तृणको उड़ा दीजिये।' वायुदेवताने भी मानो इसको अपना अपमान समझा और वे सहज ही उस तृणके पास पहुँचे, उसे उड़ाना चाहा; जब नहीं उड़ा तो उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। परंतु शक्तिमान् परमात्माके द्वारा शक्ति रोक लिये जानेके कारण वे उसे तनिक-सा हिला भी नहीं सके और अग्निकी ही भाँति हतप्रतिज्ञ और हतप्रभ होकर लज्जासे सिर झुकाये वहाँसे लौट आये एवं देवताओंसे बोले कि 'मैं तो भलीभाँति नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है।'॥ १०॥

अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति। तथेति। तदभ्यद्रवत्। तस्मात् तिरोदधे॥ ११॥

अथ=तदनन्तर; **इन्द्रम्**=इन्द्रसे; **अब्रुवन्**=(देवताओंने) यह कहा; **मघवन्**=हे इन्द्रदेव; **एतत्**=इस बातको; **विजानीहि**=आप जानिये—भलीभाँति पता लगाइये (कि); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन है; (तब इन्द्रने यह कहा) **तथा इति**=बहुत अच्छा; **तत् अभ्यद्रवत्**=(और वे) उस यक्षकी ओर दौड़कर गये (परंतु वह दिव्य यक्ष); **तस्मात्**=उनके सामनेसे; **तिरोदधे**=अन्तर्धान हो गया॥ ११॥

व्याख्या—जब अग्नि और वायु-सरीखे अप्रतिम शक्ति और बुद्धिसम्पन्न देवता असफल होकर लौट आये और उन्होंने कोई कारण भी नहीं बताया, तब देवताओंने विचार करके स्वयं देवराज इन्द्रको इस कार्यके लिये चुना और उन्होंने कहा—'हे महान् बलशाली देवराज! अब आप ही जाकर पूरा पता लगाइये कि यह यक्ष कौन है। आपके सिवा अन्य किसीसे इस काममें सफल होनेकी सम्भावना नहीं है।' इन्द्र 'बहुत अच्छा' कहकर तुरंत यक्षके पास गये, पर उनके वहाँ पहुँचते ही वह उनके सामनेसे अन्तर्धान हो गया। इन्द्रमें इन देवताओंसे अधिक अभिमान था; इसलिये ब्रह्मने उनको वार्तालापका तो अवसर नहीं दिया। परन्तु इस एक दोषके अतिरिक्त अन्य सब प्रकारसे इन्द्र अधिकारी थे, अतः उन्हें ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान कराना आवश्यक समझकर इसीकी व्यवस्थाके लिये वे स्वयं अन्तर्धान हो गये॥ ११॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाꣳ हैमवतीं ताꣳहोवाच किमेतद् यक्षमिति॥ १२॥

सः=वे इन्द्र; **तस्मिन् एव**=उसी; **आकाशे**=आकाशप्रदेशमें (यक्षके स्थानपर ही); **बहुशोभमानाम्**=अतिशय सुन्दरी; **स्त्रियम्**=देवी; **हैमवतीम्**=हिमाचलकुमारी; **उमाम्**=उमाके पास; **आजगाम**=आ पहुँचे (और); **ताम्**=उनसे; **ह उवाच**=(सादर) यह बोले (देवि!); **एतत्**=यह; **यक्षम्**=दिव्य यक्ष; **किम् इति**=कौन था॥ १२॥

व्याख्या—यक्षके अन्तर्धान हो जानेपर इन्द्र वहीं खड़े रहे, अग्नि-वायुकी भाँति वहाँसे लौटे नहीं। इतनेमें ही उन्होंने देखा कि जहाँ दिव्य यक्ष था, ठीक उसी जगह अत्यन्त शोभामयी हिमाचलकुमारी उमादेवी प्रकट हो गयी हैं। उन्हें देखकर इन्द्र उनके पास चले गये। इन्द्रपर कृपा करके करुणामय परब्रह्म पुरुषोत्तमने ही उमारूपा साक्षात् ब्रह्मविद्याको प्रकट किया था। इन्द्रने भक्तिपूर्वक उनसे कहा—'भगवती! आप सर्वज्ञशिरोमणि ईश्वर श्रीशङ्करकी स्वरूपा-शक्ति हैं। अतः आपको अवश्य ही सब बातोंका पता है। कृपापूर्वक मुझे बतलाइये कि यह दिव्य यक्ष, जो दर्शन देकर तुरंत ही छिप गया, वस्तुतः कौन है और किस हेतुसे यहाँ प्रकट हुआ था'॥ १२॥

तृतीय खण्ड समाप्त॥ ३॥

[चतुर्थ खण्ड]

सा ब्रह्मेति होवाच। ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ १॥

सा=उस (भगवती उमा देवी)-ने; **ह उवाच**=स्पष्ट उत्तर दिया कि; **ब्रह्म इति**=(वे तो) परब्रह्म परमात्मा हैं; **ब्रह्मणः वै**=उन परमात्माकी ही; **एतद्विजये**=इस विजयमें; **महीयध्वम् इति**=तुम अपनी महिमा मानने लगे थे; **ततः एव**=उमाके इस कथनसे ही; **ह**=निश्चयपूर्वक; **विदाञ्चकार**=(इन्द्रने) समझ लिया (कि); **ब्रह्म इति**=(यह) ब्रह्म है॥ १॥

व्याख्या—देवराज इन्द्रके पूछनेपर भगवती उमादेवीने इन्द्रसे कहा कि तुम जिन दिव्य यक्षको देख रहे थे और जो इस समय अन्तर्धान हो गये हैं, वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। तुमलोगोंने जो असुरोंपर विजय प्राप्त की है, यह उन ब्रह्मकी शक्तिसे ही की है; अतएव वस्तुतः यह उन परब्रह्मकी ही विजय है। तुम तो इसमें निमित्तमात्र थे, परंतु तुमलोगोंने ब्रह्मकी इस विजयको अपनी विजय मान लिया और उनकी महिमाको अपनी महिमा समझने लगे। यह तुम्हारा मिथ्याभिमान था और जिन परम कारुणिक परमात्माने तुमलोगोंपर कृपा करके असुरोंपर तुम्हें विजय प्रदान करायी, उन्हीं परमात्माने तुम्हारे मिथ्याभिमानका नाश करके तुम्हारा कल्याण करनेके लिये यक्षके रूपमें प्रकट होकर अग्नि और वायुका गर्व चूर्ण किया एवं तुम्हें वास्तविक ज्ञान देनेके लिये मुझे प्रेरित किया। अतएव तुम अपनी स्वतन्त्र शक्तिके सारे अभिमानका त्याग करके, जिन ब्रह्मकी महिमासे महिमान्वित और शक्तिमान् बने हो, उन्हींकी महिमा समझो। स्वप्नमें भी यह भावना मत करो कि ब्रह्मकी शक्तिके बिना अपनी स्वतन्त्र शक्तिसे कोई भी कुछ कर सकता है। उमाके इस उत्तरसे देवताओंमें सबसे पहले इन्द्रको यह निश्चय हुआ कि यक्षके रूपमें स्वयं ब्रह्म ही उन लोगोंके सामने प्रकट हुए थे॥ १॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ २॥

तस्मात् वै=इसीलिये; **एते देवाः**=ये तीनों देवता; **यत्**=जो कि; **अग्निः**=अग्नि; **वायुः**=वायु (और); **इन्द्रः**=इन्द्रके नामसे प्रसिद्ध हैं; **अन्यान्**=दूसरे (चन्द्रमा आदि); **देवान्**=देवोंकी अपेक्षा; **अतितराम् इव**=मानो अतिशय श्रेष्ठ हैं; **हि**=क्योंकि; **ते**=उन्होंने ही; **एनत् नेदिष्ठम्**=इन अत्यन्त प्रिय और समीपस्थ परमेश्वरको;

पस्पृशुः=(दर्शनद्वारा) स्पर्श किया है; **ते हि**=(और) उन्होंने ही; **एनत्**=इनको; **प्रथमः**=सबसे पहले; **विदाञ्चकार**=जाना है (कि); **ब्रह्म इति**=ये साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं॥ २॥

व्याख्या—समस्त देवताओंमें अग्नि, वायु और इन्द्रको ही परम श्रेष्ठ मानना चाहिये; क्योंकि उन्हीं तीनोंने ब्रह्मका संस्पर्श प्राप्त किया है। परब्रह्म परमात्माके दर्शनका, उनका परिचय प्राप्त करनेके प्रयत्नमें प्रवृत्त होनेका और उनके साथ वार्तालापका परम सौभाग्य उन्हींको प्राप्त हुआ और उन्होंने ही सबसे पहले इस सत्यको समझा कि हमलोगोंने जिनका दर्शन प्राप्त किया है, जिनसे वार्तालाप किया है और जिनकी शक्तिसे असुरोंपर विजय प्राप्त की है, वे ही साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं।

सारांश यह कि जिन सौभाग्यशाली महापुरुषको किसी भी कारणसे भगवान्‌के दिव्य संस्पर्शका सौभाग्य प्राप्त हो गया है, जो उनके दर्शन, स्पर्श और उनके साथ सदालाप करनेका सुअवसर पा चुके हैं, उनकी महिमा इस मन्त्रमें इन्द्रादि देवताओंका उदाहरण देकर की गयी है॥ २॥

सम्बन्ध—*अब यह कहते हैं कि इन तीनों देवताओंमें भी अग्नि और वायुकी अपेक्षा देवराज इन्द्र श्रेष्ठ हैं—*

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श, स ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ ३॥

तस्मात् वै=इसीलिये; **इन्द्रः**=इन्द्र; **अन्यान् देवान्**=दूसरे देवताओंकी अपेक्षा; **अतितराम् इव**=मानो अतिशय श्रेष्ठ है; **हि**=क्योंकि; **सः**=उसने; **एनत् नेदिष्ठम्**=इन अत्यन्त प्रिय और समीपस्थ परमेश्वरको; **पस्पर्श**=(उमादेवीसे सुनकर सबसे पहले) मनके द्वारा स्पर्श किया; **सः हि**=(और) उसीने; **एनत्**=इनको; **प्रथमः**=अन्यान्य देवताओंसे पहले; **विदाञ्चकार**=भलीभाँति जाना है (कि); **ब्रह्म इति**=ये साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम हैं॥ ३॥

व्याख्या—अग्नि तथा वायुने दिव्य यक्षके रूपमें ब्रह्मका दर्शन और उसके साथ वार्तालापका सौभाग्य तो प्राप्त किया था; परंतु उन्हें उसके स्वरूपका ज्ञान नहीं हुआ था। भगवती उमाके द्वारा सबसे पहले देवराज इन्द्रको सर्वशक्तिमान् परब्रह्म पुरुषोत्तमके तत्त्वका ज्ञान हुआ। तदनन्तर इन्द्रके बतलानेपर अग्नि और वायुको उनके स्वरूपका पता लगा और उसके बाद इनके द्वारा अन्य सब देवताओंने यह जाना कि हमें जो दिव्य यक्ष दिखलायी दे रहे थे, वे साक्षात् परब्रह्म पुरुषोत्तम ही हैं। इस प्रकार अन्यान्य देवताओंने केवल सुनकर जाना; परंतु उन्हें परब्रह्म पुरुषोत्तमके साथ न तो वार्तालाप करनेका सौभाग्य मिला और न उनके तत्त्वको समझनेका ही। अतएव उन सब देवताओंसे तो अग्नि, वायु और इन्द्र श्रेष्ठ हैं; क्योंकि इन तीनोंको ब्रह्मका दर्शन और तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हुई। परंतु इन्द्रने सबसे पहले उनके तत्त्वको समझा, इसलिये इन्द्र सबसे श्रेष्ठ माने गये॥ ३॥

सम्बन्ध—*अब उपर्युक्त ब्रह्मतत्त्वको आधिदैविक दृष्टान्तके द्वारा सङ्केतसे समझाते हैं—*

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा इतीन्न्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम्॥ ४॥

तस्य=उस ब्रह्मका; **एषः**=यह; **आदेशः**=साङ्केतिक उपदेश है; **यत्**=जो कि; **एतत्**=यह; **विद्युतः**=बिजलीका; **व्यद्युतत् आ**=चमकना-सा है; **इति**=इस प्रकार (क्षणस्थायी है); **इत्**=तथा जो; **न्यमीमिषत् आ**=नेत्रोंका झपकना-सा है; **इति**=इस प्रकार; **अधिदैवतम्**=यह आधिदैविक उपदेश है॥ ४॥

व्याख्या—जब साधकके हृदयमें ब्रह्मको साक्षात् करनेकी तीव्र अभिलाषा जाग उठती है, तब भगवान् उसकी उत्कण्ठाको और भी तीव्रतम तथा उत्कट बनानेके लिये बिजलीके चमकने और आँखोंके झपकनेकी भाँति अपने स्वरूपकी क्षणिक झाँकी दिखलाकर छिप जाया करते हैं। पूर्वोक्त आख्यायिकामें इसी प्रकार इन्द्रके सामनेसे दिव्य यक्षके अन्तर्धान हो जानेकी बात आयी है। देवर्षि नारदको भी उनके पूर्वजन्ममें क्षणभरके लिये अपनी दिव्य झाँकी दिखलाकर भगवान् अन्तर्धान हो गये थे। यह कथा श्रीमद्भागवत (स्कं० १।६।१९-२०)-में आती है। जब साधकके नेत्रोंके सामने या उसके हृदय-देशमें पहले-पहल भगवान्‌के साकार या निराकार स्वरूपका दर्शन या अनुभव होता है, तब वह आनन्दाश्चर्यसे चकित-सा हो जाता है। इससे उसके हृदयमें अपने आराध्यदेवको नित्य-निरन्तर देखते रहने या अनुभव करते रहनेकी अनिवार्य और परम उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। फिर उसे क्षणभरके लिये भी इष्ट-साक्षात्कारके बिना शान्ति नहीं मिलती।

यही बात इस मन्त्रमें आधिदैविक उदाहरणसे समझायी गयी है—ऐसा प्रतीत होता है। वस्तुतः यहाँ बड़ी ही गोपनीय रीतिसे ऐसे शब्दोंमें ब्रह्मतत्त्वका संकेत किया गया है कि जिसे कोई अनुभवी संत-महात्मा ही बतला सकते हैं। शब्दोंका अर्थ तो अपनी-अपनी भावनाके अनुसार विभिन्न प्रकारसे लगाया जा सकता है॥ ४॥

सम्बन्ध—*अब इसी बातको आध्यात्मिक भावसे समझाते हैं—*

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णꣳ सङ्कल्पः॥ ५॥

अथ=अब; **अध्यात्मम्**=आध्यात्मिक (उदाहरण दिया जाता है); **यत्**=जो कि; **मनः**=(हमारा) मन; **एतत्**=इस (ब्रह्म)-के समीप; **गच्छति इव**=जाता हुआ-सा प्रतीत होता है; **च**=तथा; **एतत्**=इस ब्रह्मको; **अभीक्ष्णम्**=निरन्तर; **उपस्मरति**=अतिशय प्रेमपूर्वक स्मरण करता है; **अनेन**=इस मनके द्वारा (ही); **संकल्पः च**=संकल्प अर्थात् उस ब्रह्मके साक्षात्कारकी उत्कट अभिलाषा भी (होती है)॥ ५॥

व्याख्या—जब साधकको अपना मन आराध्यदेव श्रीभगवान्‌के समीपतक पहुँचता हुआ-सा दीखता है, वह अपने मनसे भगवान्‌के निर्गुण या सगुण—जिस स्वरूपका भी चिन्तन करता है, उसकी जब प्रत्यक्ष अनुभूति-सी होती है, तब स्वाभाविक ही उसका अपने उस इष्टमें अत्यन्त प्रेम हो जाता है। फिर वह क्षणभरके लिये भी अपने इष्टदेवकी विस्मृतिको सहन नहीं कर सकता। उस समय वह अतिशय व्याकुल हो जाता है ('**तद्विस्मरणे परमव्याकुलता**'—नारदभक्तिसूत्र १९)। वह नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक उसका स्मरण करता रहता है और उसके मनमें अपने इष्टको प्राप्त करनेकी अनिवार्य और परम उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। पिछले मन्त्रमें जो बात आधिदैविक दृष्टिसे कही गयी थी, वही इसमें आध्यात्मिक दृष्टिसे कही गयी है॥ ५॥

सम्बन्ध—*अब उस ब्रह्मकी उपासनाका प्रकार और उसका फल बतलाते हैं—*

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनꣳ सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति॥ ६॥

तत्=वह परब्रह्म परमात्मा; **तद्वनम्**=(प्राणिमात्रका प्रापणीय होनेके कारण) 'तद्वन'; **नाम ह**=नामसे प्रसिद्ध है; (अतः) **तद्वनम्**=वह आनन्दघन परमात्मा प्राणिमात्रकी अभिलाषाका विषय और सबका परमप्रिय है; **इति**=इस भावसे; **उपासितव्यम्**=उसकी उपासना करनी चाहिये; **सः यः**=वह जो भी साधक; **एतत्**=उस ब्रह्मको; **एवम्**=इस प्रकार (उपासनाके द्वारा); **वेद**=जान लेता है; **एनम् ह**=उसको निस्सन्देह; **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **भूतानि**=प्राणी; **अभि**=सब ओरसे; **संवाञ्छन्ति**=हृदयसे चाहते हैं अर्थात् वह प्राणिमात्रका प्रिय हो जाता है॥ ६॥

व्याख्या—वह आनन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर सभीका अत्यन्त प्रिय है। सभी प्राणी किसी-न-किसी प्रकारसे उसीको चाहते हैं, परंतु पहचानते नहीं; इसीलिये वे सुखके रूपमें उसे खोजते हुए दुःखरूप विषयोंमें भटकते रहते हैं, उसे पा नहीं सकते। इस रहस्यको समझकर साधकको चाहिये कि उस परब्रह्म परमात्माको प्राणिमात्रका प्रिय समझकर उसके नित्य अचल अमल अनन्त परम आनन्द-स्वरूपका नित्य-निरन्तर चिन्तन करता रहे। ऐसा करते-करते जब वह आनन्दस्वरूप सर्वप्रिय परमात्माका साक्षात्कार कर लेता है, तब वह स्वयं भी आनन्दमय हो जाता है। अतः जगत्‌के सभी प्राणी उसे अपना परम आत्मीय समझकर उसके साथ हृदयसे प्रेम करने लगते हैं॥ ६॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति॥ ७॥

भोः=हे गुरुदेव!; **उपनिषदम्**=ब्रह्मसम्बन्धी रहस्यमयी विद्याका; **ब्रूहि**=उपदेश कीजिये; **इति**=इस प्रकार (शिष्यके प्रार्थना करनेपर गुरुदेव कहते हैं कि); **ते**=तुझको (हमने); **उपनिषत्**=रहस्यमयी ब्रह्मविद्या; **उक्ता**=बतला दी; **ते**=तुझको (हम); **वाव**=निश्चय ही; **ब्राह्मीम्**=ब्रह्मविषयक; **उपनिषदम्**=रहस्यमयी विद्या; **अब्रूम**=बतला चुके हैं। **इति**=इस प्रकार (तुम्हें समझना चाहिये)॥ ७॥

व्याख्या—गुरुदेवसे सांकेतिक भाषामें ब्रह्म-विद्याका श्रेष्ठ उपदेश सुनकर शिष्य उसको पूर्णरूपसे हृदयङ्गम नहीं कर सका; इसलिये उसने प्रार्थना की कि 'भगवन्! मुझे उपनिषद्—रहस्यमयी ब्रह्मविद्याका उपदेश कीजिये।' इसपर गुरुदेवने कहा—'वत्स! हम तुम्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश कर चुके हैं। तुम्हारे

प्रश्नके उत्तरमें '**श्रोत्रस्य श्रोत्रम्**' से लेकर उपर्युक्त मन्त्रतक जो कुछ उपदेश किया है, तुम यह दृढ़रूप-से समझ लो कि वह सुनिश्चित रहस्यमयी ब्रह्मविद्याका ही उपदेश है॥ ७॥

सम्बन्ध—*ब्रह्मविद्याके सुननेमात्रसे ही ब्रह्मके स्वरूपका रहस्य समझमें नहीं आता, इसके लिये विशेष साधनोंकी आवश्यकता होती है; इसलिये अब उन प्रधान साधनोंका वर्णन करते हैं—*

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्॥ ८॥

तस्यै=उस रहस्यमयी ब्रह्मविद्याके; **तपः**=तपस्या; **दमः**=मन-इन्द्रियोंका नियन्त्रण; **कर्म**=निष्काम कर्म; **इति**=ये तीनों; **प्रतिष्ठाः**=आधार हैं; **वेदाः**=सभी वेद; **सर्वाङ्गानि**=उस विद्याके सम्पूर्ण अङ्ग हैं अर्थात् वेदमें उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका सविस्तर वर्णन है; **सत्यम्**=सत्यस्वरूप परमेश्वर; **आयतनम्**=उसका अधिष्ठान—प्राप्तव्य है॥ ८॥

व्याख्या—सुन-पढ़कर रट लिया और ब्रह्मज्ञानी हो गये। यह तो ब्रह्मविद्याका उपहास है और अपने-आपको धोखा देना है। ब्रह्मविद्यारूपी प्रासादकी नींव है—तप, दम और कर्म आदि साधन। इन्हींपर वह रहस्यमयी ब्रह्मविद्या स्थिर हो सकती है। जो साधक साधन-सम्पत्तिकी रक्षा, वृद्धि तथा स्वधर्मपालनके लिये कठिन-से-कठिन कष्टको सहर्ष स्वीकार नहीं करते, जो मन और इन्द्रियोंको भलीभाँति वशमें नहीं कर लेते और जो निष्कामभावसे अनासक्त होकर वर्णाश्रमोचित अवश्य कर्तव्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करते, वे ब्रह्मविद्याका यथार्थ रहस्य नहीं जान पाते; क्योंकि ये ही उसे जाननेके प्रधान आधार हैं। साथ ही यह भी जानना चाहिये कि वेद उस ब्रह्मविद्याके समस्त अङ्ग हैं। वेदमें ही ब्रह्मविद्याके समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी विशद व्याख्या है, अतएव वेदोंका उसके अङ्गोंसहित अध्ययन करना चाहिये। और सत्यस्वरूप परमेश्वर अर्थात् त्रिकालाबाधित सच्चिदानन्दघन परमेश्वर ही उस ब्रह्मविद्याका परम अधिष्ठान, आश्रयस्थल और परम लक्ष्य है। अतएव उस ब्रह्मको लक्ष्य करके जो वेदानुसार उसके तत्त्वका अनुशीलन करते हुए तप, दम और निष्काम कर्म आदिका आचरण करते हुए साधन करते हैं, वे ही ब्रह्मविद्याके सार रहस्य परब्रह्म पुरुषोत्तमको प्राप्त कर सकते हैं॥ ८॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति॥ ९॥

यः=जो कोई भी; **एताम् वै**=इस प्रसिद्ध ब्रह्मविद्याको; **एवम्**=पूर्वोक्त प्रकारसे भलीभाँति; **वेद**=जान लेता है; [**सः**=वह;] **पाप्मानम्**=समस्त पापसमूहको; **अपहत्य**=नष्ट करके; **अनन्ते**=अविनाशी, असीम; **ज्येये**=सर्वश्रेष्ठ; **स्वर्गे लोके**=परम धाममें; **प्रतितिष्ठति**=प्रतिष्ठित हो जाता है; **प्रतितिष्ठति**=सदाके लिये स्थित हो जाता है॥ ९॥

व्याख्या—ऊपर बतलाये हुए प्रकारसे जो उपनिषद्रूपा ब्रह्मविद्याके रहस्यको जान लेता है अर्थात् तदनुसार साधनमें प्रवृत्त हो जाता है, वह समस्त पापोंका—परमात्म-साक्षात्कारमें प्रतिबन्धकरूप समस्त शुभाशुभ कर्मोंका अशेषरूपसे नाश करके नित्य-सत्य सर्वश्रेष्ठ परम धाममें स्थित हो जाता है, कभी वहाँसे लौटता नहीं, सदाके लिये वहाँ प्रतिष्ठित हो जाता है। यहाँ '**प्रतितिष्ठति**' पदका पुनः उच्चारण ग्रन्थ-समाप्तिका सूचक तो है ही, साथ ही उपदेशकी निश्चितताका प्रतिपादक भी है॥ ९॥

चतुर्थ खण्ड समाप्त॥ ४॥

॥ सामवेदीय केनोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोत्, अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु॥

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

इसका अर्थ केनोपनिषद्के प्रारम्भमें दिया जा चुका है।